॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

सम्पादक—विजयकुमार
फो० नं० २६२७९५

आदरी सहसम्पादक—ब्र० जगदीश विद्यार्थी
फो० नं० २२१३२८

षड् दर्शन समन्वय

★ वैद्य नारायणदत्त जी सिद्धान्तालङ्कार

प्राचीन आर्य संस्कृति की परम्परा में वेद अपौरुषेय अथवा ईश्वरप्रणीत तथा स्वतः प्रमाण माने गए हैं। प्राचीन दर्शनों में छः दर्शनों की गणना है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा या वेदान्तदर्शन। ये छहों दर्शन वेदों को स्वतः प्रमाण मानते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि छहों दर्शन जो कुछ जिस सीमा में रहते हुए प्रतिपादन करते हैं वह वेदों के अनुकूल ही होगा, प्रतिकूल नहीं। इन छः दर्शनों में परस्पर विरोध की भावना तभी हो सकती है जब हम वेदों में परस्पर विरोधी वचनों का होना माने। यदि वेदों में परस्पर विरोधी वचनों को माना जाए तो वेदों की स्वतः प्रमाणता ही नष्ट हो जाती है।

दर्शन का अर्थ है देखना। यह देखना हमारा साधारण दैनिक लौकिक दर्शन नहीं है यह देखना किसी विषय की गहराई तक जाना है। छः दर्शनों में विरोध है या नहीं इसे समझने के लिए सर्व प्रथम यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि इन छहों दर्शनों के निर्माता ऋषियों ने इन में क्या ज्ञानसम्पदा हमारे लिये जोड़ रक्खी है?

जिस प्रकार अर्थ सम्पदा भिन्न २ प्रकार की है—सुवर्णमुद्रा, अन्न, वस्त्र, पशुधन भवन आदि इसके अनेक रूप हैं। इन में भिन्नता होते हुए भी विरोध नहीं है। यह सब मिलकर हमारे व्यावाहारिक जीवन को सुखमय बनाते हुए अभ्युदय मार्ग पर ले जाती हैं उसी प्रकार ज्ञान सम्पदा भी अनेक प्रकार की है। ज्ञान सम्पदा अनेक प्रकार की होने से उस में हमें विरोध की कल्पना नहीं करनी चाहिये।

मिथ्या ज्ञान और ज्ञान में तो भेद कल्पना रहती है—पर ज्ञान सम्पदा की अनेकता में विरोध नहीं हो सकता। वहां अनेकता में भी एकता की अन्तर्भावना रहती है।

छहों दर्शनों के निर्माता ऋषि थे। यह महर्षि दयानन्द का मत है। इन के ऋषि होने में वेद को मानने वाले किसी व्यक्ति का मतभेद नहीं है। ऋषियों ने जो कुछ देखा—इन चर्म चक्षुओं से नहीं, अपितु ज्ञान चक्षुओं से जो कुछ देखा सूत्ररूप में हमें दिया। इसी का नाम दर्शन है।

प्राचीन काल में विद्या की उपलब्धि श्रवण

से होती थी। इसीलिए व्याकरण तथा दर्शन जैसे गूढ़ और गुह्य विषयों की निधि सूत्र रूप में ऋषियों ने हमारे लिए सुरक्षित बनाई।

इन सूत्रों की व्याख्या गुरु परम्परा से चलती रही। गुरु परम्परा में एक बहुत लम्बी परम्परा है इस परम्परा में प्रत्येक विद्वान् दर्शन सूत्रों की व्याख्या में अपने निज विवेक को भी काम में लाता रहा। अपने २ विवेक के अनुसार सूत्रों की व्याख्या करता रहा। इस प्रकार सूत्रों की व्याख्या में भेद परम्परा का प्रसार हुआ।

इस समय हमारे पास छहों दर्शनों पर अनेक भाषा टीकाए और व्याख्याएँ उपलब्ध हो रही हैं। बहुत सी प्राचीन व्याख्याएं नष्ट भी हो चुकी हैं।

महाभारत के वाद कलिकाल में हमारे देश में बहुत से धर्मों का उद्भव हुवा। इनमें बौद्धों और जैनियों का अपने प्रारम्भ काल में पर्याप्त प्रसार रहा। बौद्ध और जैन वेदों को प्रामाणिक नहीं मानते थे।

दुर्भाग्य से हमारे देश में धर्म और दर्शन का राजनीति से भी संकीर्ण सम्वन्ध मध्य काल से रहा है। भारत के भिन्न २ प्रदेशों के राजाओं ने बौद्ध और जैन धर्म स्वीकार किया। इन प्रदेशों में राज-धर्म के रूप में बौद्ध और जैन धर्म के प्रसार के कारण जन समुदाय की प्रवृत्ति प्राचीन वैदिक धर्म से हट सी गई। कुछ श्रद्धालु विद्वान् ब्राह्मणों तक ही यह प्रवृत्ति सीमित रही।

समृद्ध जन अर्थकरी विद्या और विलास में प्रवृत्त होते रहे। धनहीन दीन जनों के बच्चों को बचपन में ही भूख मिटाने के लिए भृत्यवृत्ति का अनुसरण करना पड़ा।

विद्वानों में भी दो प्रकार के समुदाय बन गए। कुछ ब्राह्मण तो पुरोहित और राज प्रशंसक भट्ट बन कर अर्थ योजना के उपयुक्त विद्यार्जन में ही अपने आप को सीमित रखने लगे। वे अच्छे समृद्ध बन गए। कुछ विद्वान् जिन्हें धर्म और शास्त्र में श्रद्धार्थी वे अर्थ की दृष्टि से दरिद्र बने रहे। अर्थ की दृष्टि से दरिद्र होते हुए भी उन में आत्माभि-मान और विद्यानुराग बना रहा। इन्हीं विद्यानु-रागी ब्राह्मणों के मनोबल से ही आज हमारे पास प्राचीन ज्ञान सम्पदा कुछ अंशों में विद्यमान है। स्वामी दयानन्द चारों वेदों को स्वतः प्रमाण तथा वेदों के ब्राह्मण, छः अङ्ग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और ग्यारहसौ सत्ताईस वेदों की शाखाओं जो वेदों की व्याख्या रूप ब्रह्मादि महर्षियों के वनाए ग्रन्थ है को परतः प्रमाण मानते थे। इन में बहुत ही कम ग्रन्थ हमें उपलब्ध हो रहे हैं। चारों वेद भी स्वामी दयानन्द को जर्मनी से मँगवाने पड़े थे।

थोड़ी सी सम्पदा जो हमारे पास शेष है उसमें भी समय २ पर प्रक्षेप होता जा रहा है। दर्शन-शास्त्र सूत्र रूप में थे अतः इन में अधिक प्रक्षेप नहीं हो सका। इन के प्राचीन भाष्य और टीकाएं अवश्य अनुपलब्ध हैं।

छः दर्शनों में विचारशैली की दृष्टि से न्याय दर्शन का प्रथम स्थान है। यह गौतम मुनि द्वारा रचा गया है। इस पर प्राचीन वात्स्यायन भाष्य भी उपलब्ध है।

न्याय दर्शन सभी दर्शनों का मूल है। न्याय का शब्दार्थ है "नीयते अनेने विन्यायः" हमें किस प्रकार किसी विषय पर उचित प्रकार से विचार करना चाहिये उस का मार्ग दर्शन उस शास्त्र में विशेष रूप से किया गया है। इसे आन्वीक्षकी विद्या भी कहते हैं। ईक्षण प्रत्यक्ष दर्शन का नाम है। प्रत्यक्ष द्वारा हम बहुत ही सीमित ज्ञान प्राप्त कर सकते है। ईक्षण भी प्रत्यक्ष के आधार पर प्रत्यक्ष न होने वाली वस्तुओं का ज्ञान आन्वीक्षण कहलाता है। इसे अनुमान भी कह सकते हैं। अनु-मान प्रमाण का विस्तृत उपयोग तर्क शास्त्र का आधार है। यह तर्क शास्त्र न केवल आध्यात्मिक विद्या का आधार है अपितु जीवन में काम में आने वाली सभी विद्याओं का आधार है। हमारे

मस्तिष्क में जितनी गति प्रगति हो रही है उस का आधार यह तर्क शास्त्र ही है।

न्याय दर्शन का विचार क्षेत्र क्या है ? इस विषय में गौतम मुनि दर्शन के प्रथम सूत्र में कहते हैं :—

"प्रमाण प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्त अवयव तर्क निर्णय वाद जल्प वितण्डा हेत्वाभास छल जाति निग्रहस्थानानां तत्व ज्ञानान्निश्रेय-साधिगमः"

निःश्रेयस या परम कल्याण तो हमारे सभी दर्शनों का लक्ष्य है। उसका साधन भी प्रायः सभी शास्त्रों ने तत्व ज्ञान ही बतलाया है।

गौतम मुनि ने तत्त्वज्ञान के लिए उपयुक्त जिन पदार्थों का यहां निर्देश किया है उस से सभी समझ सकते हैं कि न्याय दर्शन का किस दशा में प्रस्थान है। संशय, प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्त आदि की गणना पृथक् पदार्थों में न होते हुए भी आन्वीक्षिकी विद्या के आवश्यक अङ्ग हैं। इसीलिए इन का विशेष रूप से निर्देश करते हुए आगे चल कर इन की विस्तार से व्याख्या की गई है। संशय को लेकर दो पक्ष बनते है और उन में वाद चलता है। संशय के आधार पर दो पक्ष किसी प्रयोजन से ही वाद से निर्णय तक पहुँचना चाहेंगें। दृष्टान्त सिद्धान्त, पञ्च अवयव, तर्क ये सभी निर्णय तक पहुँचने के लिए वाद के विशेष अङ्ग हैं। वाद का रूप स्वच्छ बना रहे, उस में कुतर्क की गन्ध न आने पावे इसके लिए कुतर्क के उद्‌बोधक तथा कुतर्क के आश्रय पर चलने वाले जल्प वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह स्थान का वर्णन किया गया है।

यह न्याय दर्शन का विषय निरूपण स्पष्ट संकेत करता है कि इस शास्त्र का प्रधान विषय तक शास्त्र का ज्ञान करवाना है। हम जो कुछ गुरु जनों से श्रवण करें उस का तर्क द्वारा संशय हीन मनन कर सकें इसलिए तत्त्वज्ञान का यह आवश्यक अङ्ग है।

न्याय में चार प्रमाणों का प्रतिपालन है।। प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान और शब्द। शब्द का लक्षण गौतम मुनि ने किया है "आप्तो पदेशः शब्दः" आप्त कहते हैं जो सर्वत्र पहुँचा हुआ हो। जिसे दृष्ट तथा अदृष्ट अर्थ का साक्षात् ज्ञान हो। ऐसा आप्त ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता। महर्षि दयानन्द ने वेदों को ही आप्त प्रमाण माना है शेष ऋषि कृत ग्रन्थों को जहां तक उनकी वेदानुकूलता है वहीं तक उनकी प्रमाणता को स्वीकार किया है। मनु ने भी इसी प्रकार माना है।

चार प्रमाणों तथा संशय आदि तर्क साधनों के द्वारा हमें क्या जानना है उन प्रमेयो की गणना गौतम ऋषि ने इस प्रकार की है :—

आत्म शरीरेन्द्रियार्थ बुद्धि मनः प्रवृति दोष प्रेत्यभाव फल दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्।

अपवर्ग या मोक्ष को प्राप्त करना मनुष्य का मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आत्मा का सम्बन्ध शरीर, इन्द्रिय, इन्द्रियों के अर्थ गन्ध-रस, रूप स्पर्श और शब्द तथा बुद्धि और मन के साथ होता है। इसके द्वारा इसकी विषयों में प्रवृत्ति होती है। प्रवृत्ति से राग द्वेष आदि दोषों का उद्भव होता है। इस राग द्वेषादि दोषों से प्रेत्यभाव या पुनर्जन्म और दुःख की प्राप्ति होती है। गौतम मुनि के अनुसार अपवर्ग या मोक्ष को प्राप्त करने के लिए इन प्रमेयों का ज्ञान आवश्यक है।

इन प्रमेयों में ईश्वर का नाम कहीं नहीं है। गौतम मुनि ईश्वर को नहीं मानते थे यह तो नहीं माना जा सकता क्योंकि न्याय दर्शन अ० ४ सूत्र १९ व २१ में कहते हैं :—

ईश्वरः कारणं पुरुष कर्मा फल्य दर्शनात्"
तत्कारित्वादहेतुः"

शुभ अशुभ कर्मों का फल देने वाला ईश्वर है। केवल कर्म ही फलदाता नहीं हो सकते। पुरुष फल के लिए कर्म करता है। ईश्वर कर्मों के अनुसार फल का सम्पादन करता है।

गौतम मुनि ने इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार का ईश्वर के विषय में विवेचन नहीं किया। बाद में आने वाले नैय्यायिकों ने ईश्वर को जगत् का कर्त्ता, धर्त्ता, संहर्ता रूपों में प्रतिपादन किया है। उदयनाचार्य ने तो आत्म तत्त्व विवेक और न्याय कुसुमाञ्जलि रच कर ईश्वर की सिद्धि का विस्तृत विवेचन किया है।

जहाँ तक मैं समझता हूँ प्राचीन ऋषि ईश्वर को तर्क या प्रवचन का विषय नहीं समझते थे। वे इसे शब्द शास्त्र तथा योग द्वारा अधिगम्य समझते थे। इसलिए योगदर्शन और वेदान्त दर्शन के अतिरिक्त शेष चार दर्शनों में ईश्वर का विशेष रूप से निरूपण नहीं किया गया।

योग का अंतिम लक्ष्य निर्विकल्प समाधि द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति है। वेदान्त का विषय ज्ञान के चरम लक्ष्य ब्रह्म को श्रुति वचनों के समन्वय द्वारा समझना और जानना है। शेष चार दर्शनों के अपने अलग २ क्षेत्र हैं। उन्हीं क्षेत्रों तक उन्होंने अपने आप को सीमित रक्खा है।

उदयनाचार्य को तर्क द्वारा अनीश्वरवाद का खण्डन करते हुए ईश्वर सिद्धि तर्क द्वारा इसीलिए करनी पड़ी कि उन दिनों तर्क द्वारा बौद्ध और जैन ईश्वर का खण्डन करते हुए जन-साधारण में अनीश्वर वाद को फैला रहे थे। इस दृष्टि से उदयनाचार्य का आज का आस्तिक वादी सदा कृतज्ञ रहेगा।

न्याय दर्शन का अध्ययन करते हुए इस बात का ध्यान और रखना चाहिये कि गौतम मुनि ने तत्त्वज्ञान के लिए आवश्यक प्रमाण प्रमेयादि गणना के बाद प्रमाण के द्वारा जानने के लिए उपयुक्त प्रमेयों का वर्णन किया है। सृष्टि के पदार्थों का नहीं। इसीलिए आगे आने वाले वैशेषिक दर्शन की पदार्थ गणना के साथ इस का विरोध नहीं समझना चाहिये।

वैशेषिक दर्शन कणाद मुनि का रचा हुआ है। कणाद परम तपस्वी मुनि थे। वैशेषिक दर्शन का मुख्य विषय पदार्थों के धर्म का निरूपण है। इस दर्शन का प्रथम सूत्र है—

"अथातो धर्मं व्याख्या स्यामः" इस ग्रन्थ में हम धर्म की व्याख्या करेंगे। कणाद का धर्म बड़ा व्यापक धर्म है। यह विश्व धर्म है। द्वितीय सूत्र में वे धर्म का लक्षण करते हैं :—

"यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः सधर्मः" जिस प्रकार पदार्थों के साथ तत्त्वज्ञान से हमें अभ्युदय-लोक में चतुर्मुखी उदय या उत्कर्ष प्राप्त हो। तथा निःश्रेयस-परम कल्याण मोक्ष प्राप्त हो उसी का नाम धर्म है।

धर्म के ज्ञान में कणाद वेद को प्रमाण मानते थे। वे तृतीय सूत्र में कहते हैं :—

"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्" पदार्थों के धर्म अर्थात् सत्य स्वरूप का आम्नाय-वेद में प्रतिपादन किया गया है अतः वेद कणाद मुनि के लिए प्रमाण स्वरूप है।

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के नियमों में कणाद मुनि की इस मान्यता को स्वीकार किया है।

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" यह आर्यसमाज का तृतीय नियम है।

किरणावली प्रकाश ने "तत्" शब्द का अर्थ ईश्वर किया है। तद्वचनादिति। तेनेश्वरेण वचनात् प्रणयनाद् आम्नायस्य प्रामाण्यमित्यर्थः वेद आम्नाय ईश्वर प्रणीत है अतः उस की प्रमाणता है।

अब प्रश्न उठता है कि वे पदार्थ कौन से हैं जिनके धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से निःश्रेयस

मिलता है ! इसके लिए चतुर्थ सूत्र में कणाद मुनि कहते है—

"धर्म विशेश प्रसूताद् द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायनां पदाथानां साधर्म्म वैधर्म्माभ्यां तत्त्वज्ञाना निःश्रेयसम् ।"

गौतम मुनि ने न्याय दर्शन में हमें यह बतलाया कि प्रमाणों द्वारा हमें किन प्रमेयों को जानना है जिससे हम तर्क द्वारा मनन करते हुए अपवर्ग को प्राप्त कर सकते हैं।

कणाद मूल पदार्थों का निर्देश करते हैं जिस में सभी प्रमेयों का समावेश है। गौतम ने प्रत्येक शब्द का प्रयोग किया है। कणाद ने पदार्थ शब्द का। गौतम ने तत्त्वज्ञान के लिए उपयुक्त विषयों में संशय प्रयोजन आदि विषयों का समावेश किया है। इससे स्पष्ट है कि गौतम आन्वीक्षिकी या तर्क विद्या को प्रतिपादन करना चाहता था और कणाद पदार्थों के धर्मों का।

पदार्थों के धर्मों के ज्ञान के लिए कणाद को भी आन्वीक्षिकी विद्या को ही उपयोग में लाना पड़ेगा। पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान केवल प्रत्यक्ष द्वारा नहीं हो सकता। आम्नाय वेद द्वारा प्रतिपादित धर्म ज्ञान का भी आन्वीक्षिकी विद्या द्वारा मनन करना पड़ेगा। कणाद मुनि का ही सूत्र वचन है—"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" वेद में वाक्यों-वचनों की कृति-निर्माण बुद्धिपूर्वक है। इस सिद्धान्त को समझने के लिए गौतम द्वारा प्रतिपादित आन्वीक्षिकी विद्या ही एक मात्र साधन है।

पदार्थों के धर्मों का प्रतिपादन वैशेषिक का विषय है। इस धर्म ज्ञान के लिए कणाद हमारा ध्यान साधर्म्म और वैधर्म्म की ओर आकर्षित करते हैं। साधर्म्म हमें पदार्थों की एक धर्मिता, एक रूपता या सजातीयता का ज्ञान करावेगा। वैधर्म्म पदार्थों की विधर्मिता-भिन्नता या विशेषता का ज्ञान करावेगा। केवल साधर्म्म ज्ञान से हम वस्तु के स्वरूप को नहीं जान सकते। संसार में सर्वत्र एक रूपता के साथ जुड़ी हुई भिन्नरूपता या विशेषता भी पाई जाती है। मनुष्यों में मनुष्य स्वरूप में साधर्म्मता होते हुए भी शरीरादि तथा गुणों की भिन्नता से अपना २ व्यक्ति विशेष पाया जाता है। इसी प्रकार सभी चेतन और जन पदार्थों में जाति गत साधर्म्म होते हुए भी व्यक्तिगत वैधर्म्म पाया जाता है। वैधर्म्म को प्रतिपादन करने के लिए वैशेषिक दर्शन में "विशेष" भी एक पृथक् पदार्थ तत्त्वज्ञान के लिए माना गया है। वस्तुतः देखा जाय तो विशेष धर्म से ही हम जगत् के पदार्थों को नाना रूपों में जान सकते हैं। इस विशेष की मान्यता के कारण इस दर्शन का नाम "वैशेषिक" है। विशेष वैशेषिक दर्शन की अपनी विशेषता है।

द्रव्यों के धर्म के ज्ञान के लिए उन गुण के, कर्म, उनकी परस्पर समानता, एक दूसरे से विशेषता तथा कार्य कारण सम्बन्ध का ज्ञान आवश्यक है। इसी दृष्टि से कणाद मुनि ने पदार्थों की गणना में द्रव्यों के साथ गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय का अन्तर्भाव किया। इन पाँच पदार्थों के ज्ञान के बिना हम द्रव्यों के धर्मों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

द्रव्यों की गणना कणाद ने ५ म सूत्र में इस प्रकार की है :—

"पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालोदिगात्मा मनः इति द्रव्याणि"

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन ये नौ द्रव्य कणाद ने माने हैं।

महर्षि दयानन्द ने जगत् के कारणों में दर्शन समन्वय करते हुए वैशेषिक दर्शन के विषय में लिखा है यह काल को जगत् का एक कारण मानता है। यह इस स्थल का यद्यपि विषय नहीं पर कई बार यह आशंका उठती रही है कि वैशेषिक दर्शन में यहाँ पर काल को भी जगत् का

एक कारण माना है या नहीं ? मैं इस दर्शन में दो सूत्र उद्धृत करता हूँ—"कारणेन काल: ॥ अध्याय ५। आ० २। सूत्र० २६ में "कारणे काल !" अध्याय ७, आ २ सूत्र २५, इन दोनों सूत्रों में जगत् के कारणों में काल को भी एक विशिष्ट कारण माना है।

अस्तु अब मैं अपने विषय पर आता हूँ:— कणाद मुनि ने नौ द्रव्यों की गणना में ईश्वर या ब्रह्म का निर्देश नहीं किया। इतना अवश्य है कि वैशेषिक दर्शन के प्राप्त होने वाले सब से प्राचीन भाष्य प्रशस्तपाद भाष्य में भाष्य का आरम्भ करते हुए सर्वप्रथम ईश्वर की वन्दना की गई है।

"प्रणम्य हेतुमीश्वरं मुनिं कणादमन्वत:" सर्वप्रथम ईश्वर को जगत् का "हेतु" कारण मान-कर उसे प्रणाम किया गया है। उसके अनन्तर भाष्यकार ने कणाद मुनि को नमस्कार किया है। यह सन्दर्भ इस बात का द्योतक है कि प्रशस्त-पाद कणाद को अनीश्वर वादी नहीं मानता था। कणाद ने कहीं ईश्वर का खण्डन नहीं किया। प्राचीन शास्त्र परम्परा में यह विधान है कि "परमत मप्रतिपिद्धम् अनुमतं भवति" यदि किसी शास्त्र के मत का प्रतिषेध न किया जाय तो उसे अनुमान समझना चाहिए। इस विधान के अनु-सार वैशेषिक दर्शन को ईश्वरवादी ही समझना चाहिए।

इसके अतिरिक्त कणाद अम्नाय (वेद) को प्रमाण मानता है ग्रन्थ के प्रथम अध्याय का तीसरा सूत्र तथा अन्तिम अध्याय का अन्तिम सूत्र है "तद्वचनाद्यम्नादास्य प्रामाण्यम्"। वेद की प्रमा-णता ग्रन्थ के आरम्भ तथा अन्त में दोनों स्थानों पर कणाद ने स्वीकार की है। वेद ईश्वरवादी है इसमें दो मत नहीं हो सकते। इस प्रकार ईश्वर का सीधा वर्णन न करने पर भी कणाद को अनी-श्वरवादी नहीं कह सकते।

वैशेषिक दर्शन द्वितीय अध्याय प्रथम आह्निक का १८वाँ सूत्र है—संज्ञा कर्म तु अस्मद् विशिष्टानां लिङ्गम्" पदार्थों का नाम कारण पृथिवी अप् तेज वायु आकाश आदि इस बात का बोधक है कि हम मनुष्यों से कोई विशिष्ट सत्ता है। कणाद जैसे उच्चकोटि के मुनियों का इस प्रकार का संकेत ईश्वर की सत्ता की ओर है यह कुछ दार्शनिकों का मत है।

प्रसिद्ध जैन दार्शनिक हरिभद्र सूरि ने अपने ग्रन्थ षड्दर्शन समुच्चय में वैशेषिक दर्शन के विषय में लिखा है "देवता विषये भेदो नास्ति नैय्यायिकै: समं वैशेषिकारणम्" देवता अर्थात् ईश्वर के विषय नैय्यायिकों और वैशेषिकों का कोई मतभेद नहीं है।

इससे यह स्पष्ट है कि मध्यकालीन ईश्वर को न मानने वाले दार्शनिक भी वैशेषिक को अनी-श्वरवादी नहीं मानते थे। ईश्वरवादी ही मानते थे।

न्याय वैशेषिक दोनों ने पृथिवी, जल, तेज, वायु इन चारों की उत्पत्ति इसके परमाणुओं से मानी है। उनका तर्क है कि इन चारों को विभक्त करते जाओ। जहाँ जाकर यह अवस्था आये कि इनके भाग न हो सकें उन्हीं का नाम परमाण है। दो परमाणुओं के संयोग के द्वयणुक तथा उसके बाद उनके संयोग से उनमें वृहत् परिमाणु होता जायगा। इस प्रकार परमाणुओं द्वारा इन महाभूतों से जगत् की उत्पत्ति होती है। आकाश विभू है।

न्याय और वैशेषिक समानमन्त्र समझे जाते हैं। इसमें समझ विचार अनुमान के आधार पर तर्क द्वारा किया जाता है। पाँच भौतिक जगत् को देख कर तर्क या अनुमान द्वारा मनुष्य पर-माणुवाद तक ही पहुँच सकता है। आकाश विभू है। शेष चार भूत पदार्थों के निर्माण में तर्क या प्रत्यक्ष मूलक अनुमान परमाणुवाद तक ही पहुँच सकता है।

न्याय का अपना विशेष व्याख्यान का विषय सर्वशास्त्र का प्रतिपादन या आन्वीक्षिकी विद्या है। वैशेषिक का विषय पदार्थों के धर्म का साधर्म्य और वैधर्म्य द्वारा प्रतिपादन है। साधर्म्म और वैधर्म्य की सीमा परमाणुवाद तक ही सीमित रहती है। इस प्रकार इन दोनों दर्शनों का विषय परमाणुवाद तक ही सीमित है।

परमाणुवाद के मानने वाले शास्त्रों के लिए ईश्वर को मानना अनिवार्य बना रहता है। परमाणु असंख्य है। नाना जातीय हैं। अचेतन हैं। "इन असंख्य परस्पर विजातीय चेतना हीन जड परमाणुओं से इस जगत् का निर्माण कैसे हो सकता है" इस समस्या का समाधान करने के लिए सभी तथा नैय्यायिकों ने ईश्वर की सता को स्वीकार किया है। तथा नैय्यायिक प्रायः न्याय और वैशेषिक को एक साथ लेकर चले हैं।

न्याय वैशेषिक के बाद अब सांख्य दर्शन पर आते हैं। सांख्य दर्शन के रचयिता कपिल मुनि थे। गौतम साधुस्वभाव के ऋषि थे। कणाद परम तपस्वी समझे जाते थे। कपिल ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए सिद्ध पुरुष के रूप में प्रसिद्ध था।

कपिल मुनि ने सांख्य दर्शन प्रारम्भ करते हुए त्रिविध दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति को ही अत्यन्त पुरुषार्थ कहा है। सांख्य दर्शन का प्रथम सूत्र है :—

"अथ त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्ति रत्यन्त पुरुषार्थः"।

दुःख का कारण कणाद के मत में प्रकृति और पुरुष का संयोग है। संयोग का कारण अविवेक है। सांख्य अ० १ सूत्र ५५" तद्योगोऽप्यविवेकान्न" १।५५। इस सूत्र से यह स्पष्ट है कि प्रकृति और पुरुष का संयोग विवेक के कारण है। यह अविवेक प्रकृति और पुरुष के विवेक ज्ञान से नष्ट हो सकता है। विवेक ज्ञान के लिए हमें प्रकृति और उसके विकारों तथा पुरुष के स्वरूप को जानना है। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष के स्वरूप का ज्ञान करवाना ही कपिल मुनि का मुख्य उद्देश्य है जिस के निमित्त उसने सांख्य दर्शन की रचना की।

विवेकान्निः शेष दुःख निवृतौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात्। ३-८४॥

पूरे जोर के साथ कपिल मुनि कहते हैं कि विवेक के द्वारा निःशेष दुःखों की निवृत्ति से ही कृतकृत्यता होती है। और किसी उपाय से नहीं।

कपिल मुनि २५ तत्त्व मानते हैं। सांख्य अ० १ सूत्र ६१। **सत्व रजस्तमां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्ः महतो ऽहंकारः अहंकरात् पञ्चतन्मात्राणि उभयमिन्द्रियं, तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशति गणाः॥**

प्रकृति का लक्षण सत्व रज तम की साम्यावस्था का प्रतिपादन करते हुए उनके विकास क्रम का निर्देश किया है। प्रकृति और उसके विकास पञ्चमहाभूत तथा २४ तत्व बनते हैं। २५ वाँ तत्व पुरुष माना है।

गौतम और कणाद पाँच महाभूतों तक पहुंचे। आकाश को व्यापक माना और शेष चार महाभूतों के परमाणुओं से उनकी उत्पत्ति को प्रदर्शित किया। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ कि प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षमूलक अनुमान के द्वारा यहीं तक पहुँचा जा सकता है। दर्शन का प्रथम चरण जिज्ञासुओं के लिए यहीं तक पर्याप्त रहता है कपिल मुनि इसके आगे बढ़ते हैं। वे कहते हैं कि परमाणु तथा आकाश अन्तिम तत्त्व नहीं है। अन्तिम तत्त्व जहाँ इनका समावेश समाप्त होता है अथवा आदितत्त्व जहाँ से इनका विकास होता है वह प्रकृति है। प्रकृति से महान्, महान् से अहंकारः, अहंकार से पञ्चतन्मात्रा तथा एकादश इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्रा से पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति होती है।

परमाणुओं से ऊपर जितने तत्व है उनकी सत्ता यद्यपि कपिल मुनि अनुमान से मानते हैं पर

प्रकृति तक पहुँच करके यही कहते हैं कि अनवस्था प्रसंग से हम आगे नहीं बढ़ सकते। यहाँ उत्पत्ति में आदि और लय में अन्तिमतत्व है। यह काम मेरे जैसे साधारण बुद्धि वाले के समझ में नहीं आई। मैं समझता हूँ कि परमाणु से ऊपर जितने तत्व हैं उनका ज्ञान हो प्रकार से हो सकता है आप्त प्रमाण या वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा। अनुमान या तर्क के आधार पर प्रत्यक्ष पाँच भूतों के निर्माण में परमाणु तत्त्व के आगे जाने की क्या आवश्यकता है? क्यों न अव्यस्था भय से यहीं रुका जाय? इसका समाधान मुझे तर्क द्वारा नहीं मिलता।

वेद में प्रकृति-महान्-अहंकार का इस प्रकार का निर्देश स्पष्ट रूप से मैं नहीं पा सका। द्वा-सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते। इस मन्त्र से यह तो स्पष्ट है कि ईश्वर और आत्मा के अतिरिक्त आत्मा के भोग के लिए एकत्र तृतीय तत्त्व है। इस प्रकार उस तृतीय तत्त्व को एकतत्त्व मानने के अभिप्राय से वृक्ष का अर्थ प्रकृति किया जा सकता है। उपनिषदों में इसको अवश्य पाया गया है "अनमेकां लोहितशुल्ककृष्णां" यह सन्दर्भ सांख्य के प्रकृति तत्त्व का स्पष्ट निर्देशक है।

आजकल के वैज्ञानिक अनुसन्धान में प्रोट्रोन, अलक्ट्रोन, न्यूट्रोन का सिद्धान्त सांख्य के त्रिगुणात्मक प्रकृति से मिलता जुलता है। बम्बई के दिवंगत प्रसिद्ध वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य ने एक लेख में इस पर विस्तार से विचार करते हुए इन दोनों सिद्धान्तों की समानता की पुष्टि की है। मैं वैज्ञानिक नहीं हूँ अतः इस विषय में एक रूपता कहाँ तक है इसे स्पष्ट नहीं कर सकूँगा पर यह विचारणीय अवश्य है।

सांख्य के प्रकृतिवाद और न्याय वैशेषिक के परमाणु वाद से परस्पर विरोध नहीं माना जा सकता। न्याय वैशेषिक जहाँ तक गए उसके आगे सांख्य बढ़ा यही समझना चाहिए।

न्याय और वैशेषिक के समान सांख्य ने भी २५ तत्त्वों में ईश्वर या ब्रह्म का नाम नहीं लिया। इसका कारण यह नहीं समझना चाहिए कि सांख्य ईश्वर या ब्रह्म को नहीं मानता था। मैं ऊपर कह आया हूँ कि सांख्य का विषय प्रकृति और उसके विकास का निरूपण एक पुरुष या आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए विवेक पर प्रकाश डालता है। इसलिए प्रारम्भ में विषय निरूपण में ब्रह्म के नाम की गणना की आवश्यकता नहीं। ब्रह्म निरूपण वेदान्त दर्शन का विषय है जिसका आगे जाकर मैं वर्णन करूँगा। सांख्य दर्शन पर प्राचीन भाष्य भामुनि का जिसे महर्षि दयानन्द ने प्रामाणिक माना है— उपलब्ध नहीं है। सूत्रों के अर्थ भाष्यकारों ने अपनी २ मति के अनुसार किये हैं। अनिरुद्ध और विज्ञानभिक्षु के भाष्य इस समय उपलब्ध होते हैं। कुछ आर्य विद्वानों ने भी इस पर भाष्य किये हैं। इनमें स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज का सांख्य दर्शन पर भाष्य अध्ययन के लिए मुझे सर्वोत्तम प्रतीत हुआ। स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने वैशेषिक योग और वेदान्त दर्शन पर भी भाष्य किये हैं। उन में आपको महर्षि दयानन्द के दर्शनों के विषय में अविरोध के भय में विचार शृङ्खला अनुकूल बन सकेगी।

सांख्य दर्शन ईश्वर को मानता था यह तो एक स्पष्ट और विवाद के ऊपर बात है। सांख्य दर्शन अध्याय ५ सूत्र ११६ इस प्रकार हैं— "समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता" समाधि सुषुप्ति और मोक्ष में पुरुष की ब्रह्मरूपता हो जाती है। पुरुष सत् चित तो है ही आनन्द रूप भी अपने आपको अनुभव करता है। यद्यपि सुषुप्ति की अवस्था अनुभव हीनता समझी जाती है पर सुषुप्ति से जागृत अवस्था में आने पर पुरुष अनुभव करता है—"सुखममस्वाप्स्वम्" मैं सुख की नींद सोया। सुख की नींद का छिपा अनुभव आनन्द मयता का द्योतक है।

अनिरुद्ध ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए

ब्रह्मरूपता का अर्थ "ब्रह्मणा सहतुनयताय" किया है। विज्ञान भिक्षु कपिल मुनि को ईश्वरवादी मानते हैं पर यहाँ ब्रह्म शब्द के अर्थ का अनर्थ करते हुए उन्हें संकोच न हुआ। वे ब्रह्मरूपता का अर्थ करते हैं—"ब्रह्मरूपता बुद्धिवृत्तिविलयः तदौपाधिक परिच्छेद विगमेन, स्व स्वरूप पूर्णतया वस्थानं यथा धष्टध्वंक्षे घटाकाशस्य पूर्णता इत्यर्थ !" "अस्मत् शास्त्रे ब्रह्म शब्द औपाधिक परिच्छेद मालित्य रहित परिपूर्ण चेतन सामान्य वाची न तु ब्रह्ममीमांसायामिव ऐश्वर्योपलक्षित पुरुष मात्र वाचीति विवेक्तकम्।"

विज्ञान भिक्षु के विचार में ब्रह्मरूपता का अभिप्राय है कि जैसे घट के नष्ट हो जाने पर घट में रहने वाला आकाश विशाल आकाश रूप हो जाता है उसी प्रकार बुद्धि की वृत्तियों के विलय हो जाने से आत्मा परिच्छिन्न नहीं रहता अपितु अपने स्वरूप में पूर्णतया अवस्थित हो जाता है। विज्ञान भिक्षु के मत में बुद्धि की उपाधि से आत्मा में परिच्छेद (संकुचित सीमा) और मालिन्य रहता है पर बुद्धि वृत्तियों के विलय से यह परिच्छेद और मालिन्य नष्ट हो जाता है। इस परिच्छेद और मालिन्य रहित अवस्था में परिपूर्ण चैतन्य का नाम ही ब्रह्म है। वेदान्त दर्शन की तरह ऐश्वर्यमय पुरुष ब्रह्म से उपलक्षित नहीं है।

यह विज्ञान भिक्षु की संकुचित विचारता का परिचायक है। ब्रह्म शब्द का मुख्य अर्थ न लेकर खींचा तानी के साथ लाक्षणिक अर्थ करना केवल अपने मत से पोषण करने का प्रयत्न मात्र है।

प्रकृति को कपिल मुनि ने परवश माना है। स्वतन्त्र नहीं माना। "प्रकृतिनिबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम्" १-१८ पुरुष जन्म मरण के बन्धन में क्यों आता यह विचार करते हुए कपिल मुनि कहते हैं कि पुरुष का यह बन्ध प्रकृति के कारण नहीं क्योंकि प्रकृति परवश है। परवश का स्पष्ट अर्थ है कि प्रकृति का सारा क्रिया कलाप कार्यरूप में परिणत होते हुए जगत् रूप में आना और जगत् में प्रलय काल में विलय उससे अपने वश की बात नहीं है। वह किस के वश में है इसका स्पष्टीकरण तृतीय अध्याय के ५५-५७ सूत्रों में किया है :—

"अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्" ३।५५।।

प्रकृति कारणरूप है—कार्य रूप नहीं फिर भी इसका तद्योग कार्य रूप में परिणाम होना परवश होने से सम्पन्न होता है। वह कौन है जो इसे कार्यरूप में परिणित करता है इसका सार अगले सूत्र में दिया है "**सहि सर्वबित् सर्वकर्त्ता**" ३।५६ वह सर्वज्ञ और सर्वकर्त्ता ही इसे कार्यरूप में परिणर करता है।

यह सर्वज्ञ और सर्व कर्त्ता कौन है इस का उत्तर अगले सूत्र दिया है :—ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धा" इस प्रकार के सर्ववित् सर्वकर्ता ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है।

ऊपर कहे गए स्पष्ट स्वाभाविक अर्थों को छोड़ कर इन सूत्रों की व्याख्या में खींचा-तानी करके ईश्वर सिद्धि के विपरीत अर्थ करना अनर्थ ही है।

सांख्य दर्शन अ. १ सूत्र ५२ "ईश्वरासिद्धे" सूत्र का उपयोग ईश्वर की असिद्धि में किया जाना है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए यद्यपि विज्ञान भिक्षु ने कुछ उदारता का परिचय देते हुए व्याख्या में लिखा है—ईश्वरे प्रमाण भावाद न दोष इत्यनुवर्तते। अमंचेश्वर प्रतिषेध एक देशिनां प्रोढवादेनै वेति प्रणेव प्रति पाद्रितम्। अन्यथा ईश्वरा भावास् इत्येवोच्येत। अर्थात् कपिल मुनि ने यहां इतना ही कहा है कि ईश्वर की सिद्धि में प्रमाण है। यह ईश्वर का प्रतिषेध एक देशीय है। यदि कपिल मुनि ईश्वर को न मानते होते तो यहां ईश्वरा भावीद् कहते—ईश्वरा सिद्धेः न कहते।

यह सूत्र "ईश्वरा सिद्धे" उस प्रकरण का है जहां प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण किया है। इस के आगे पीछे ईश्वर या सृष्टि रचना का कोई प्रकरण

नहीं है। प्रत्यक्ष का लक्षण कपिल मुनि ने किया है—"यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्"

जो वस्तु के साथ सम्बन्ध से सिद्ध उस वस्तु के आकार का उल्लेख या उद्बोध कराने वाला विज्ञान है उसे प्रत्यक्ष कहते है। सामने गाय खड़ी है। इसके सम्बन्ध के सिद्ध गाय के आकार का उद्बोध करने वाला विज्ञान प्रत्यक्ष कहलायगा।

इसके बाद दो सूत्र हैं :—योगिनाम बाह्य प्रत्यक्षत्वान्नदोषः" "लीनवस्तु लब्धातिशय सम्बन्धाद्वा" योगियों को बाह्य वस्तु न होते हुए भी अतिन्द्रिय या अतिरिक्त प्रत्यक्ष होता है। यह प्रत्यक्ष के अनासक्ति ही समझना चाहिये। लीन या अतिन्द्रिय वस्तु भी योगियों के समक्ष उपलब्ध रहती है। लीन वस्तुओं के साथ उनका सम्बन्ध अप्रतिबद्ध रहता है। यदि योगियों के अवाह्य या अतिन्द्रिय वस्तुओं के प्रत्यक्ष को न माने तो—"ईश्वरासिद्धेः" ईश्वर की सिद्धि ही नहीं हो सकती अतः योगि प्रत्यक्ष को भी प्रत्यक्ष मानना चाहिये।

इस प्रकार "ईश्वरासिद्धे" सूत्र अनीश्वर वाद का नहीं अपितु ईश्वर में परम विश्वास का द्योतक सूत्र है।

इस सूत्र के बाद कपिल ने अनुमान प्रमाण का लक्षण किया है। वैशेषिक दर्शन में पदार्थों का निरूपण करते हुए द्रव्य के अतिरिक्त गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय पदार्थ गिनाए हैं। द्रव्यों का समावेश तो प्रकृति के विकारों के अन्तर्गत हो जाता है पर गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय का समावेश कहां होगा। यह प्रश्न आप लोग कर सकते हैं। इसका समाधान यह है कि वैशेषिक परमाणु तक ही अपने आपको सीमित रखता है। परमाणुओं में परस्पर भिन्नता परमाणुवाद में माननी आवश्यक है। यह भिन्नता गुण, कर्म से ही रह सकती है। यदि गुण कर्म की गणना पदार्थों में न की जाय तो सभी पृथिव्यादि द्रव्य एक हो जाते हैं। जहाँ पृथिवी और जल के परमाणुओं में परस्पर भिन्नता है वहाँ पृथिवी के सभी परमाणुओं में परस्पर साधर्म्य होने से समानता है।

इस समानता और भिन्नता को प्रकट करने के लिए "सामान्य" "विशेष" दो पदार्थ मानने पड़े। पृथक् २ परमाणु किस प्रकार मिलकर एक द्रव्य का निर्माण उसके कारण रूप बनते हैं उस के लिए समवाय सम्बन्ध की कल्पना करनी पड़ी।

इस प्रकार परमाणुओं से जगत् के निर्माण को मानने वालों के लिए इन पदार्थों की कल्पना संगत है। सांख्य में अन्तिम कारण एक प्रकृति को माना जाता है। प्रकृति एक भाव है इसमें सामान्य विशेष की कल्पना की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार परमाणु कल्पना को आधार मान कर वैशेषिक की पदार्थ कल्पना सांख्य सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। जहाँ तक वैशेषिक पहुँचा है सांख्य उसके आगे चलता है। विषय भेद और श्रेणी भेद अवश्य है पर विरोध नहीं है।

सांख्य के बाद योगदर्शन पर आइये। योगदर्शन का विषय योग है। पातञ्जलि ने योगदर्शन के प्रथम सूत्र में कहा है—"अथयोगानुशासनम्"। योग का लक्षण अगले सूत्र में किया है—"योगश्चित वृत्ति निरोधः" चित्त की वृत्तियों का निरोध योग कहलाता है। इस जन्म तथा जन्मान्तरों के संस्कारों के कारण चित्त में अच्छी बुरी सभी तरह की वृत्तियाँ अन्तर्गत रहती हैं। वृत्तियाँ ही चित्त की निधि है। चित्त में घातक और जीवनदायिनी दोनों प्रकार की वृत्तियां है। पतञ्जलि मुनि कहते हैं कि चित्त में जिस प्रकार की जितनी वृत्तियाँ हैं उनकी समीक्षा करो। क्लेशदायनी घातक वृत्तियों को दूर फेंक दो। जीवन को श्रेय मार्ग पर ले जाने वाली वृत्तियों की सेना को संगठित करो। जोड़ो। यह अन्तरीय देवासुर संग्राम है। ब्रह्म तक पहुँचना तुम्हारा लक्ष्य है। आसुरी वृत्तियाँ उस में बाधक है। दैवीय वृत्तियाँ सहायक

हैं। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा आसुरी वृत्तियों को दूर करो। दैवीय वृत्तियों की चित्त में प्रतिष्ठा करो। प्रणव-ओम का अर्थ भावना के साथ जप करते हुए अष्टाङ्ग योग का अभ्यास करते हुए निर्विकल्प समाधि द्वारा उस ब्रह्म तक पहुँचो। यहाँ योगदर्शन में विस्तार से बतलाया गया है।

योग दर्शन सांख्य का सहयोगी है। सांख्य के समान सृष्टि निर्माण में चौबीस प्रकृति और उसके विकारों को तथा पच्चीसवें जीवात्मा को योग दर्शन मान्यता देता है। ईश्वर का तो स्पष्ट शब्दों में योगदर्शन में वर्णन है। योग का ईश्वर का लक्षण है—"क्लेश कर्म विपाकाक्षयैरवरामृष्ट पुरुष विशेष ईश्वरः" क्लेश, कर्म, का विपाक, आशय शरीर सम्बन्ध से रहित पुरुष विशेष का नाम ईश्वर है। ईश्वर सिद्धि का युक्ति द्वारा भी समर्थन किया गया है। "स पूर्वेषामपिगुरु कालेनानवछेदात्" "तत्र निरभिशयं सार्वज्ञ बीजम्" आदि गुरु जहाँ से ज्ञान का विकास हुआ वह ईश्वर है। ईश्वर में काल की सीमा नहीं, वह अनादि है। जहाँ काल की सीमा है वहाँ पूर्वापर की परम्परा बनी रहती है। संसार नियमों से बँधा हुआ है। वैज्ञानिक अन्वेषण इस बात के पोषक हैं कि संसार में निपम और व्यवस्था है। इन नियमों की व्यवस्था और जगत् की स्थापना एक सर्वज्ञ की व्यवस्थापक ओर संकेत करती है। यह सर्वज्ञ जिसके आगे ज्ञान की अतिशयता समाप्त हो जाती है इस संसार का व्यवस्थापक हो सकता है। यह निरतिशय सर्वज्ञ ईश्वर है। इसकी विभूतियों और इन विभूतियों के स्वामी ईश्वर को जानना ही योगदर्शन का विषय है।

जहाँ तक पूर्व मीमांसा दर्शन का प्रश्न है मैंने इसके सूत्रों का अध्ययन नहीं किया। इन दिनों मीमांसा सूत्रों पर कोई प्रमाणिक भाष्य प्राप्य नहीं कर सका। मीमांसा विषयक साधारण ज्ञान के आधार पर ही इस दर्शन का विवेचन करूँगा। यह दर्शन जैमिनि का रचा हुआ है।

वैशेषिक दर्शन में पदार्थ धर्म का प्रतिपादन किया गया है और पूर्व मीमांसा में कर्मकाण्ड सम्बन्धी धर्म का वर्णन है। मीमांसा का भी प्रथम सूत्र यही है—"अथातोधर्म व्याख्यास्यामः" अब हम धर्म की व्याख्या करेंगे। यह धर्म क्या है इसका उत्तर जैमिनि देते हैं—"चोदना लक्षणो धर्मः" चोदना प्रेरणा का पर्याय है। इस का अभिप्राय यह हुआ कि पूर्व मीमांसा का उद्देश्य चोदना या कर्म की मीमांसा है। इसीलिये इस दर्शन को कर्म मीमांसा भी कहते हैं। साधारणतः मीमांसा दर्शन के सूत्रों का पाठ करने पर उन में पूर्व के चार दर्शनों के समान दार्शनिक विवेचन नहीं है। पूर्व मीमांसा दर्शन इसीलिए कहलाता है कि यह कर्म काण्ड के आधारभूत सिद्धान्तों को युक्ति तथा तर्क द्वारा व्यवस्थित करता है। कर्मकाण्ड की विधियों में जहाँ कहीं एक दूसरे से विरोध दृष्टिगोचर होता है। उन की व्याख्या करके विरोध का परिष्कार करता है।

जैमिनि के दार्शनिक सिद्धान्त अध्यात्म तथा भौतिक भावों के विषय में क्या है इसमें मतभेद रहा है। कर्म काण्ड के आधारभूत सिद्धान्तों का विवेचन इस दर्शन का विषय है अतः इस में दार्शनिक तत्त्वों का स्पष्ट पृथक् विवेचन नहीं है। कर्म के साथ सशरीर आत्मा का सम्बन्ध है अतः गौण रूप से इस विषय में जैमिनि के मन्तव्यों का जो आभास मिलता है उसी के आधार पर विद्वानों ने जैमिनि के मत की व्याख्या की है।

पूर्व मीमांसा पर मुख्य तथा सब से प्राचीन भाष्य शाबर का है। मैं अभी तक शाबर भाष्य प्राप्त नहीं कर सका। शाबर भाष्य पर जो टीकाएं हुई है उनसे यही प्रतीत होता है यह भाष्य भी बाद में आने वाले विद्वानों का इस प्रकार का पथ प्रदर्शन नहीं कर सका जिस से जैमिनि के मत पर वे एकार्थ का प्रतिपादन कर सकें।

जैमिनि ने मीमांसा दर्शन में स्पष्ट रूप से ये तीन प्रमाणों का प्रतिपादन किया है। प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द। बाद में आने वाले आचार्यों में कुमारिल भट्ट ने इस दर्शन में छः प्रमाण माने हैं—'प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि।

प्रभाकर मिश्र ने अनुपलब्धि के अतिरिक्त शेष पाँच प्रमाणों को मीमांसा के अनुकूल माना है।

यह प्रमाण संख्या के विषय में मतभेद जैमिनि के सूत्रों में विषय प्रतिपादन के समय पर किये जाने वाले तर्क के आधार पर समझा गया है ऐसा मेरा विचार है। मीमांसा दर्शन से अनभिज्ञ होने से इस विषय पर मैं प्रमाणिक मत प्रकट नहीं कर सकता।

जैमिनि शब्द प्रमाण में वेद को अपौरुषेय का मानता है। कर्म धर्म के विषय में वह वेद को ही एम मात्र प्रमाण मानता है। अपौरुषेय का अर्थ पूर्व मीमांसा दर्शन के व्याख्याकारों ने यही किया है कि वह किसी पुरुष विशेष ईश्वर ही द्वारा निर्मित नहीं है। वह अनादि काल से चला आ रहा है। महर्षि दयानन्द अपौरुषेय इसी अर्थ में मानते हैं कि वेद किसी पुरुष अर्थात् मनुष्य के द्वारा नहीं रचा गया अपितु परब्रह्म परमात्मा ने चार ऋषियों के हृदयों में इस का प्रकाश किया।

पूर्व मीमांसा दर्शन के प्रमुख व्याख्याकार कुमारिल भट्ट और आचार्य प्रभाकर को पूर्व मीमांसा में ईश्वर के दर्शन नहीं हुए। कुमारिल भट्ट को मैं ईश्वर पर विश्वास न करने वाला नहीं मानता। उन्होंने अपने इस मौलिक देह का दाह स्वयं तुषाग्नि में किया था। जिस समय उनके देह का दाह हो रहा था आचार्य शंकर उनसे मिलने के लिए उनके पास पहुँच गये। इस प्रकार तुषाग्नि में देह का दाह करने का कारण पूछने पर कुमारिल भट्ट ने कहा :—

आचार्यप्रवर! मैंने अपने जीवन में दो पाप किये हैं। एक तो यह कि मैंने जिस बौद्ध गुरु से बौद्ध धर्म का अध्ययन किया और उस बौद्ध गुरु से जो कुछ पाया उसका खण्डन किया। दूसरा यह कि मैंने ईश्वर की सत्ता का खण्डन किया। इन दोनों पापों के प्रायश्चित करने के निमित्त मैं इस देह का तुषाग्नि में स्वयं दाह कर रहा हूँ।

जैमिनि कर्मवादी था। उसने कर्म को ही अधिक महत्व दिया। फल भोग का कारण भी कर्म को ही माना। फल भोग का कारण कर्म है इस में किसी का मतभेद नहीं है। जैमिनि का व्याख्यान विषय ब्रह्म निरूपण न था। अतः उन्होंने ब्रह्म का निरूपण अपने व्याख्यान में नहीं किया। जैमिनि के अनुयायियों ने यह माना कि वह कर्म को ही जगत् का एक मात्र कारण मानता था। कर्म फल दाता ईश्वर को नियामक नहीं मानता था। इस में कोई सन्देह नहीं कि ईश्वर ऐसा न्यायकारी है कि वह फल भोग में कर्म का किसी प्रकार अनादर नहीं करता। फल तो कर्म के अनुसार अनिवार्य तौर पर मिलेगा। पर इस का यह अभिप्राय नहीं निकालना चाहिये कर्म ही सब कुछ है उस में किसी और नियामक की आवश्यकता नहीं है।

कुमारिल भट्ट इतना तो स्वीकार करते हैं कि परमात्मा के विषय में विचार जैमिनि के नहीं है। यह वेदान्त का विषय है। वे एक स्थान पर लिखते हैं :—

कुर्वाणस्यात्म मीमांसा वेदान्तोक्तेन वर्त्मना।
मुक्ति! सम्पद्यतेसद्यो नित्यानन्द प्रकाशिनी॥

इस श्लोक का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि आत्म मीमांसा पूर्व मीमांसा का विषय नहीं है। यह वेदान्त दर्शन का विषय है। वेदान्त में कहे गये मार्ग के अनुसार आत्म मीमांसा करते हुए नित्य आनन्द का प्रकाश करने वाली मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

कुमारिल भट्ट और प्रभाकर भट्ट के अतिरिक्त

पूर्व मीमांसा के तीसरे आचार्य मुरारि मिश्र हुए हैं। वे जैमिनि के मतानुसार पाँच पदार्थ मानते हैं। ब्रह्म तथा लौकिक चार पदार्थ धर्म-विशेष धर्मि-विशेष आधार-विशेष और प्रदेश-विशेष।

इस का स्पष्ट अभिप्राय हुआ कि मुरारि मिश्र जैमिनि को अनीश्वर वादी नहीं मानते थे। इससे आप भली प्रकार समझ सकते हैं कि दर्शनों के सूत्रों के अर्थों में कितनी खींचातानी होती रही है। इसी भाष्यों और सूत्रों में खींचातानी का ही परिणाम है कि हम सभी दर्शनों में मतभेद पा रहे हैं। समन्वय के विचार से सभी दर्शन शास्त्रों का अर्थ किया जा सकता है जो हमें सच्चे मार्ग का प्रदर्शन करे।

पूर्व मीमांसा में जैमिनि मुनि ने ईश्वर की ओर संकेत अवश्य किया है।

पूर्व मीमांसा में अध्याय छः पाद दो के अंतिम २१-३१ सूत्रों में उपदेश दिया है कि काल से शास्त्रोक्त विधान के अनुसार कर्म करना चाहिये। वे उपाय वेदानुकूल होने चाहियें। इस प्रकार उपदेश देते हुए तृतीय पाद के प्रथम सूत्र में कहते है :—"सर्वशक्तौ प्रवृत्तिः स्यात् तथाभूतोपदशात्" इस प्रकार के उपदेश से सर्वशक्ति सम्पन्न की ओर प्रवृत्ति होती है। यह सर्वशक्ति सम्पन्न की ओर ही स्पष्ट संकेत है।

इसी प्रकार अध्याय ६ पाद २ सूत्र १६ में कहा है —

"लोकेकर्मणि वेदवत् ततोऽधिपुरुष ज्ञानम्"
यह वेद की मान्यता के विषय में यद्यपि पूर्वपक्षा है पर ईश्वर की मान्यता की ओर जैमिनि का संकेत इस में अवश्य है—इसका अर्थ है वेदों की तरह लोक शास्त्र के द्वारा कर्म का ज्ञान तथा अधि पुरुष का ज्ञान हो सकता है तो वेदों को मानने की क्या आवश्यकता है? यह अधि पुरुष भी जैमिनि के ईश्वर की मान्यता का बोधक है।

परमात्मा के अतिरिक्त आत्मा के विषय में मीमांसा के सभी सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं जैमिनि आत्मा को तथा आत्मा के बहुत्व को मानता था। पर इस विषय में कुमारिल भट्ट मीमांसा दर्शन के शावर भाष्य पर अपना मत प्रकाशित करते हुए श्लोक वार्तिक में लिखते हैं—

इत्याह नास्तिक्य निराकरिष्णु आत्मास्वितां भाष्य कृदत्र मुक्त्या दृढत्वमेतद् विषयश्च बोध प्रयाति वेदान्त निषेवणेन॥

नास्तिकता के निराकरण करने के इच्छुक भाष्यकार शावर यह कहते हैं कि आत्मा के अस्तित्व को तो जैमिनि मानते हैं पर आत्मा के अस्तित्व को युक्ति से दृढ़ करना या आत्मा का बोध वेदान्त के अनुशीलन से ही प्राप्त हो सकती है।

इसमें नास्तिक्य निराकरविष्णु शब्द इस बात का द्योतक है कि कुमारिल भट्ट के अनुसार शावर जैमिनि को नास्तिक नहीं मानता था पर वह आत्मा परमात्मा का विषय पूर्व मीमांसा का नहीं समझता था अपितु उत्तर मीमांसा का ही समझता था आस्तिक्य शब्द ईश्वर और आत्मा दोनों के अस्तित्व का बोधक है।

भौतिक पदार्थों के विषय में सभी मीमांसा के व्याख्याता यह तो स्वीकार करते हैं कि जैमिनि-न्याय वैशेषिक के अनुसार परमाणुवाद को मानते थे। प्रक्रिया में सामान्य मतभेद है जिस पर जाने की आवश्यकता नहीं। कुमारिल भट्ट के अनुसार जैमिनि पाँच पदार्थ मानते थे :—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य तथा अभाव। प्रभाकर भट्ट के अनुसार आठ पदार्थ—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य परतन्त्रता, शक्ति, संख्या।

परतन्त्रता—समवाय के अन्तर्गत आ जाता है। शक्ति का अर्थ है द्रव्य शक्ति के बिना कार्य नहीं कर सकता। प्रतिबन्धक का अभाव का नाम ही जड़ पदार्थों में शक्ति समझा जाता है ऐसा कुमारिल भट्ट का मत है। संख्या गुणों के अन्तर्गत

आ जाती है। वैशेषिक और सांख्य दर्शन के विषय निरूपण के अवसर पर मैं इन द्रव्यों की मान्यता में कोई परस्पर विरोध उत्पन्न नहीं होगा यह प्रतिपादन कर चुका हूँ।

छठा दर्शन वेदान्त दर्शन वादरायण का लिखा हुआ है। वेदान्त सूत्रों की व्याख्याएँ सभी व्याख्याकारों ने अपने २ सिद्धान्तों के अनुसार की है। वेदान्त दर्शन का नाम उत्तर मीमांसा भी है। पूर्व मीमांसा में जैमिनि ने वेदों में कर्म-मीमांसा का समन्वय प्रदर्शित किया है। उत्तर मीमांसा में वादरायण ने वेदों में ब्रह्म मीमांसा के समन्वय का प्रदर्शन किया है।

आचार्य शंकर ने अधिकतर उपनिषदों को लेकर अद्वैतपरक समन्वय करके सभी सूत्रों की व्याख्या अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार की है। अन्य बहुत से व्याख्याकारों ने वेदान्त दर्शन पर अपने-अपने मत के अनुसार सूत्रों की व्याख्या की है। इस प्रकार सूत्रकार महर्षि वादरायण व्यास का क्या मत था यह व्याख्याकारों की व्याख्याओं से नहीं जाना जा सकता।

महर्षि वादरायण के वेदान्त दर्शन का प्रथम सूत्र है "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" इस शास्त्र में हमें ब्रह्म के स्वरूप के जानने की चाहना है। ब्रह्म का स्वरूप क्या है इस विषय में अगले दो सूत्रों में वे कहते हैं :—

"जन्माद्यस्य मतः" शास्त्रयोनित्वात्"

इस संसार का जहाँ से जन्म हुआ, उत्पन्न होने के बाद जो इनकी सत्ता को बनाए रखता है—इसमें व्यवस्था का स्थिर रखना है और जिस के द्वारा इस का लय हो जाता है वह "ब्रह्म" है।

इस सूत्र में यह कहीं नहीं कहा गया कि ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है या निमित्त।

अगले सूत्र "शास्त्रयोमित्वात" का अर्थ शंकराचार्य ने दो प्रकार से किया है—एक तो यह कि—ऋग्वेदादिशास्त्रों में ये सब प्रकार का महान् ज्ञान भरा पड़ा है उसे देखकर यह मानना पड़ेगा कि ये किसी सर्वज्ञ कल्प के बनाए हुये हैं। वह सर्वज्ञ इन शास्त्रों का निर्माण ब्रह्म है। दूसरा अर्थ है ऋग्वेदादि शास्त्रों के द्वारा ही हम ब्रह्म को जान सकते हैं। वे शास्त्र ही ब्रह्म ज्ञान के 'बोधक' कारण है। अन्य प्रमाण नहीं, इन दोनों सूत्रों का अर्थ अद्वैतपरक ही हो सकता है द्वैतपरक नहीं यह मैं मानने को तैयार नहीं। इन दोनों सूत्रों का अर्थ क्या किया जाय इसके लिए चतुर्थ सूत्र है "सतु समन्वयात्" ब्रह्म जगत् का कर्त्ता, धर्ता संहर्त्ता है यह ब्रह्म निर्मित शास्त्रों के समन्वय से जानना चाहिये।

ब्रह्म निर्मित शास्त्रों के वचनों का समन्वय अद्वैत परक है यह आचार्य शङ्कर का मत है। द्वैत परक है यह महर्षि दयानन्द का मत है। आचार्य शङ्कर उपनिषदों को भी ब्रह्म निर्मित ऋग्वेदादि शास्त्रों की शाखा मानते हैं। महर्षि दयानन्द चार वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदों का प्रकाश ही साक्षात् ब्रह्म द्वारा मानते हैं। वेदों में स्पष्ट वर्णन है—

१—ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः। मागृधः कस्य स्विद्धनम्। यजुर्वेद ४०। १॥

२—सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणं···याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

यजु० ८। ४०॥

३—द्वा सुपर्णा स युजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति। अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥

जगत् ईश में बसा हुआ है। ईश व्यापक है। जगत् व्याप्य है। जीव को इस जगत् का उपभोग त्याग भाव से करना चाहिये। यह प्रथम मन्त्र की भावना है। खींचातानी को छोड़कर स्पष्ट भावना से इस प्रथम मन्त्र में द्वैतवाद की है।

दूसरे मन्त्र में स्पष्ट शब्दों में बताया है कि

वह सर्वव्यापी ईश्वर शाश्वत काल से नियमों के अनुसार एक समान जगत् को बनाता चला आ रहा है।

तीसरे मन्त्र में दो सुपर्णों का वर्णन है। जो दोनों सखा भाव से एक वृक्ष पर आरूढ़ हैं। सखा भाव दो ही होगा। एक तत्त्व में नहीं हो सकता। ये दोनों सखा वृक्ष पर बैठे हैं वह तीसरी वस्तु संसार है जो प्रकृति का विकार है। इसमें एक सखा इस वृक्ष के स्वादु फल का भक्षण कर रहा है। दूसरा उसे वृक्ष से फल का उपभोग तो नहीं पर अपने सखा को उपभोग करते हुए देख रहा है।

इस प्रकार वेद में स्थान २ पर ब्रह्म-जीव और जगत् की पृथक् कल्पना मिलती है। महर्षि दयानन्द इन वेद मन्त्रों के समन्वय के आधार पर त्रैतवाद का प्रतिपादन करते हैं।

आचार्य शङ्कर भी प्रकृति के बिना इस संसार की आपत्ति को नहीं समझ सके। उन्होंने प्रकृति को अव्यक्त अविद्या माया नाम दिया है। अव्यक्त नाम तो सांख्य और योग सिद्धान्त में भी आया है। आचार्य शङ्कर अव्यक्त को ईश्वर की शक्ति के रूप में ईश्वराधीन मानते हैं। इस की स्वतन्त्रता सभी स्वीकार नहीं करते। आचार्य शंकर इस अव्यक्त को असत् भी नहीं मानते। प्रकृति को पराक्रमादि सांख्य योग वाद भी कहते हैं पर वे पृथक् सारभौतिक है। द्वैतपरक वेदान्त दर्शन की व्याख्या के अनुसार वेदान्त दर्शन ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या करते हुए प्रकृति और जीव की पृथक सत्ता मानता है।

वेदान्तसूत्र १-४-२३।

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुरोधात्प्रकृति जगत् के जन्मादि का कारण है। पर स्वतन्त्र कारण नहीं परमात्माधीन ईश्वराधीन ही जगत् का कारण है।

"साक्षाच्चोभयाम्नानात्" १-४-२५।

परमात्मा और प्रकृति दोनों का आम्नाय में वर्णन है अतः दोनों ही जगत् के कारण है।

वेदान्त में जीव को अमर और नित्य प्रतिपादित किया है :—

नात्मा ऽश्रुतेः नित्यत्वाच्च ताभ्यः २-३-१७

आत्मा न उत्पन्न होता है; नाही नष्ट होता है। इसकी उत्पत्ति और नाश नहीं होते। इस प्रकार की कोई श्रुति नहीं जो इसे उत्पाद विनाशशील बतलावे। नित्य बतलाने वाली श्रुतियाँ उपलब्ध होती है।

इस प्रकार संक्षेप से मैंने आपके समक्ष अपनी शुद्ध बुद्धि और स्वल्प अध्ययन के आधार पर यह विषय प्रस्तुत किया है। इस में विवादास्पद विषय भी बहुत हैं। वे सभी विवादास्पद विषय तभी विचारे जा सकते हैं जब छहों दर्शनों का विषय निरूपण भी विस्तार से किया जाय और उन में पाये जाने वाले अंशों पर सूक्ष्म विवेचन किया जाय। हमें अपना दृष्टिकोण यहाँ रखना चाहिये कि जिस अवस्था में सभी दर्शन वेद को मान्यता प्रदान करते हैं वे वेदानुकूल विषय का प्रतिपादन करने वाले ही होने चाहिये। समन्वय दृष्टि के वर्शनों का स्वाध्याय करने से छहों दर्शन हमारी ज्ञान सम्पदा को परिपूर्ण बनाने में सहायक होंगे और हम ब्रह्म-जीव, जगत् तथा कर्म भी माया का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त कर सकेंगे।

अन्त में मैं अपने इस युग के मार्ग दर्शक महर्षि दयानन्द के प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत करूँगा जिसने हमें इस समन्वय दृष्टि से देखने की प्रेरणा प्रदान की।